शोध मंथन, Impact Factor 5.463 (SJIF), UGC No. 40908 ISSN: (P): 0976-5255, (e) : 2454-339X,
Vol. 9, Issue 3, pp (253-259), Month: Sep. 2018

ब्रिटिश भारत में संविधानिक प्रक्रिया का विकास

डॉ० अजयपाल सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग
सनातन धर्म (पी0जी0) महाविद्यालय,
मुजफ्फरनगर

सारांश

भारतीयों के स्वतंत्रता आंदोलन के अनवरत संघर्ष के पश्चात भारतीय संविधान का वर्तमान मूल स्वरूप 26 जनवरी 1950 को अस्तित्व में आया जिसे समकालीन विश्व के उपलब्ध संविधानों के विशिश्ट मिश्रणों से डॉ0 बी0आर0 अंबेडकर की अध्यक्षता में प्रारूप समिति द्वारा तैयार किया गया। हालांकि भारत का गणतांत्रिक व्यवस्था के रूप में गौरवशाली अतीत रहा है महाजनपद काल में अनेक गणराज्यों की उपस्थिति व चोल साम्राज्य की विकेंद्रीकृत लोक व्यवस्था एक विशिष्ट लोकतांत्रिक समाज का चित्रण पेश करती हैं। किंतु राजतंत्रीय प्रणाली के वर्चस्व व अनेक विदेशी आक्रमणों के परिणामस्वरूप यह गणतांत्रिक व्यवस्था अधिक विकसित व व्यवस्थित आकार न ले सकी।

सोलहवीं सदी के समकालीन समाजों में यूरोपीय समाज काफी अग्रिम, आधुनिक व व्यवस्थित था। 17वीं सदी के प्रारंभ में भारत में यूरोपियों का व्यवस्थित आगमन एक व्यापारी कंपनी के रूप में होता है तथा इसके पश्चात इन्हीं व्यापारिक कंपनियों ने अपनी सामरिक व व्यापारिक चपलता से भारत को राजनीतिक रूप से अपने अधीन कर लिया। इन यूरोपियनो में पुर्तगाली, डच, ब्रिटिश व फ्रांसीसी प्रमुख थे। 18 वीं सदी के आरंभ तक अंग्रेजों व फ्रांसीसियों ने पुर्तगालियों व डचों को व्यापारियों के रूप में भारत से पद स्थापित कर दिया और 19वीं सदी तक ब्रिटिश फ्रांसीसियों को हराकर भारत के एक्क्षेत्र स्वामी बन गए।

इंग्लैंड को संसदीय प्रणाली का आरंभकर्ता देश भी माना जाता है जहां संसदीय संस्थाओं का उद्भव व विकास एक लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम रहा है।[1] 'एंग्लो सेक्शन वितन व नॉर्मन क्यूरिया रेजिस जैसी सलाहकारी संस्थाएं एक अरसे से इंग्लैंड में बड़ी भूमिका का निर्वाह कर रही थीं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यूरोप की अन्य शक्तियों की तुलना में ब्रिटिश को संसदीय प्रणाली, विनियमों, नियमों–कानूनों की जानकारी ज्यादा थी जिनका प्रयोग वह अपने उपनिवेशों को विजित करने तथा उन पर नियंत्रण बनाए रखने के लिए करते थे। आधुनिक दलीय व्यवस्था का विकास 19वीं सदी में हुआ जहां इंग्लैंड में संसद के समर्थकों को ह्विग कहा जाता था और राजतंत्र के समर्थकों को टोरी कहा जाता था और आगे चलकर हिग दल की उत्तराधिकारी लिबरल पार्टी हुई और टोरी दल की उत्तराधिकारी कंजरवेटिव पार्टी हुई।[2]

24 अक्टूबर 1764 ई0. के बक्सर युद्ध की विजय के बाद ब्रिटिश भारत के एक प्रमुख केंद्रीय शक्ति के रूप में विद्यमान थे। भारत के सभी प्रमुख सामरिक व व्यापारिक भौगोलिक क्षेत्र इनके प्रत्यक्ष नियंत्रण में थे तथा वह अब भारत में अधिक स्थाई व व्यवस्थित व्यवस्था चाहते थे। जिससे कि भारतीयों व अन्य दूसरी क्षेत्रीय शक्तियों के साथ कम से कम संघर्ष हो।[3] 1765 ई0. में क्लाइव द्वारा लागू की गई दोहरी व्यवस्था इसी नीति का ही प्रमुख भाग थी जिसमें कंपनी दीवानी कार्य के लिए उत्तरदायी थी और बंगाल का नवाब लोक व्यवस्था (नाजिम) के लिए उत्तरदायी था। किंतु कंपनी को इस व्यवस्था से आशातीत लाभ नहीं हुआ क्योंकि उन दिनों कंपनी के सेवकों को निजी व्यापार करने की अनुमति थी और इसका उन्होंने अत्यधिक अनुचित लाभ उठाया। ईस्ट इंडिया कंपनी को आंतरिक प्रशासन की दृष्टि से देखा जाए तो इसका संचालन दो संस्थाओं द्वारा होता था बोर्ड ऑफ प्रोपराइटर तथा कोर्ट ऑफ डायरेक्टर[4] बोर्ड ऑफ प्रोपराइटर कंपनी के साझेदारों की की आम सभा थी तथा इसी के द्वारा ही कोर्ट ऑफ डायरेक्टर के सदस्यों का चयन किया जाता था। 1772 ई0. में वारेन हेस्टिंग्स को बंगाल का गवर्नर बनाकर भेजा गया इस समय कंपनी के सम्मुख प्रशासनिक व वित्तीय समस्याएं उपस्थित थी। क्लाइव द्वारा स्थापित दोहरा शासन प्रणाली के दोश भी स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे थे। कंपनी के आर्थिक चिट्टे में हानि की तुलना में लाभ दिखाकर कंपनी के कर्मचारियों व अंशधारियों को ऊंची दर पर लाभांश वितरित किए जा रहे थे कंपनी की बिगड़ती हुई वित्तीय स्थिति बहुत दिनों तक छुपाई ना जा सकी और अंततः निराश होकर डायरेक्टरों ने बैंक ऑफ इंग्लैंड से 10 लाख पौंड का ऋण मांगा। संभवत यह कंपनी की स्वतंत्रता का अंत था। अंततः ब्रिटिश संसद ने दो अधिनियम पारित किए प्रथम के अनुसार कंपनी को चार प्रतिशत की ब्याज दर पर 14 लाख का ऋण दिया गया जबकि दूसरे अधिनियम द्वारा रेगुलेटिंग एक्ट पारित किया गया इस विधेयक का कंपनी तथा उसके मित्रों ने डटकर विरोध किया।

रेगुलेटिंग एक्ट के द्वारा कंपनी के संविधान में इंग्लैंड तथा भारत दोनों ही जगह परिवर्तन किए गए। इंग्लैंड में बोर्ड ऑफ प्रोपराइटर में वोट देने का अधिकार केवल उन लोगों को दिया गया जो चुनाव से पूर्व 1000 पौंड के शेयर धारक रहे हो और कोर्ट डायरेक्टर की संख्या 24 रखी गई जिसमें से 25ः प्रतिवर्ष रिटायर होंगे। इस प्रकार पहली बार ब्रिटिश मंत्रिमंडल को अप्रत्यक्षतः ही सही भारतीय मामलों को नियंत्रित करने का अधिकार दिया गया। बंगाल में एक प्रशासन मंडल बनाया गया जिसमें गवर्नर जनरल अध्यक्ष के रूप में तथा चार सदस्य सहायक के रूप में नियुक्त किए गए। इस मंडल में बहुमत से निर्णय लिए जाते थे तथा अध्यक्ष बराबरी की स्थिति में ही निर्णायक मत का प्रयोग कर सकता था। यह लोग 5 वर्ष की अवधि के लिए नियुक्त किए जाते थे तथा कोर्ट आफ डायरेक्टर की सिफारिश पर ही केवल ब्रिटिश सम्राट द्वारा ही हटाए जा सकते थे। इस अधिनियम के अन्य प्रावधानों में सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना भी की गई तथा कंपनी के सभी कर्मचारी तथा सभी भारतीय व यूरोपीय इसके अधिकार क्षेत्र में कर दिए गए इस प्रकार अब ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ साथ ब्रिटिश सरकार भी भारतीय व्यापार व प्रशासन के माध्यम से जुड़ गई।

कुछ वर्षों के पश्चात रेगुलेटिंग एक्ट को संशोधित करने हेतु 1781 ई० में एक इंडिया एक्ट पास किया गया जिसके अनुसार कंपनी के पदाधिकारियों द्वारा अपने शासकीय रूप में किए गए कार्यों के लिए अब वे उच्चतम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर कर दिए गए।[5] 1772 ई0. में एक प्रवर समिति का गठन रेगुलेटिंग एक्ट तथा सर्वोच्च न्यायालय की कार्य प्रणाली का अध्ययन करने के लिए नियुक्ति किया गया था इस समिति की अनुशंसाओं के अनुसार 1784 ई0. में ब्रिटिश प्रधानमंत्री पिट को प्रेशित एक नया एक्ट लाया गया जिसे भविश्य में पिटस एक्ट के नाम से जाना गया इस। अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार ब्रिटिश सरकार का कंपनी के मामलों में नियंत्रण बढ़ा दिया गया यद्यपि कंपनी के व्यापार को अछूता छोड़ दिया गया परंतु सभी सैनिक, असैनिक व राजस्व संबंधी सभी मामलों को एक नियंत्रण बोर्ड के अधीन कर दिया गया। जिसमें एक चांसलर ऑफ एक्सचेकर, एक राज्य सचिव तथा इनके द्वारा नियुक्त चार प्रीवी काउंसिल के सदस्य होते थे। भारत में प्रशासन अब गवर्नर जनरल तथा चार की बजाए तीन सदस्य वाली परिषद के हाथ में दे दिया गया। इस एक्ट के द्वारा मुंबई तथा मद्रास प्रेसिडेंसी को भी बंगाल के गवर्नर जनरल की परिषद के अधीन कर दिया गया तथा 1786 ई0. में इसे संशोधित करके नया प्रावधान जोड़ा गया जिसके अंतर्गत गवर्नर जनरल के पद के साथ–साथ सेनापति की शक्तियां भी इसमें समाहित कर दी गयीं।

1793 ई0. के चार्टर एक्ट द्वारा कंपनी के वाणिज्यक अधिकारों को अगले 20 वर्ष तक बढ़ाकर सुरक्षित कर दिया गया कुछ मामूली परिवर्तन किए गए किंतु भारतीय प्रशासन की दृष्टि में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया गया। बोर्ड ऑफ कंट्रोल के अध्यक्ष को अब प्रेसिडेंट कहा जाने लगा था।[6] 20 वर्ष बाद जब 1813 ई0. में कंपनी के चार्टर एक्ट के नवीनीकरण का प्रश्न संसद में उठाया गया तब स्वतंत्र व्यापार तथा क्लासिक राजनीति अर्थशास्त्र की विचारधारा लोकप्रिय हो रही थी जिसका प्रभाव 1813 ई0. के चार्टर एक्ट पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। धीरे–धीरे कंपनी द्वारा विजित क्षेत्रों से कंपनी का भौगोलिक व प्रशासनिक प्रसार हो रहा था और अब कंपनी के लिए व्यापारिक व प्रशासनिक कार्य संयुक्त रूप से संभालना भी मुश्किल हो रहा था। इसलिए 1813 ई0. का आज्ञा पत्र प्रदान करने के साथ–साथ सरकार ने कंपनी के व्यापारिक एकाधिकार पूर्णता समाप्त (चाय व चीन को छोड़कर) कर दिए गए।

सन 1833 ई0. में ब्रिटिश संसद ने फिर से 20 वर्ष के लिए कंपनी को नया अज्ञापत्र प्रदान किया इसके द्वारा कंपनी का शासन क्षेत्र सीमित कर दिया गय। यह तय किया गया कि अगले 20 वर्षों तक भारतीय इलाकों पर कंपनी का शासन होगा किंतु कंपनी उन अधिकारों को ब्रिटिश सम्राट व उसके उत्तराधिकारी और भारत सरकार की सेवा में धरोहर के रूप में रखेगी। इसके अंतर्गत विलियम बैटिंक को भारत का पहला गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया। इसके अलावा परिषद में एक और चौथा सदस्य कानूनी विशेषज्ञ के रूप में लॉर्ड मैकाले को नियुक्त किया गया अधिनियम की धारा 97 के द्वारा भारत में विधान पालिका में केंद्रीकरण किया गया किंतु इसे कार्यपालिका से पृथक व स्वतंत्र नहीं बनाया गया क्योंकि इससे पहले भारत में पांच भिन्न प्रकार से कानून बनाए जाते थे नामतः ब्रिटिश संसद द्वारा पारित कानून,

चार्टर द्वारा बनाए गए नियम, गवर्नर जनरल के आदेश, सर्वोच्च न्यायालय के आदेश, तथा विभिन्न प्रेसिडेंसियो में बनाए गए कानून यह सभी अधिकार अब केवल ब्रिटिश गवर्नर जनरल के आधीन कर दिए गए।

अंतिम चार्टर एक्ट 1853 ई0. में लाया गया क्योंकि लॉर्ड डलहौजी की व्यापगत नीति के परिणाम स्वरूप जो राज्य कंपनी शासन के अधीन लाए गए थे उनके लिए कंपनी के प्रचलित प्रशासन में संशोधन करना अत्यंत आवश्यक हो गया था इस चार्टर एक्ट के द्वारा कंपनी के राजनीतिक अधिकारों को बनाए रखा गया।[7] कोर्ट ऑफ डायरेक्टर के सदस्यों की संख्या 24 से घटाकर 18 कर दी गई प्रशासनिक नियुक्तियों पर कोर्ट का संरक्षण समाप्त कर दिया गया तथा नियुक्तियां प्रतियोगिता आधारित परीक्षा द्वारा की जाने लगी। अगस्त 1858 ई0. में ब्रिटिश संसद ने एक कानून बनाया जिसके द्वारा भारतीय शासन की बागडोर अब ब्रिटिश सम्राट के हाथ में सौंप दी गई बोर्ड ऑफ कंट्रोल तथा कोर्ट आफ डायरेक्टर की व्यवस्था को समाप्त करके उनके स्थान पर भारत सचिव का एक पद बनाया गया जो 15 सदस्यों वाली एक समिति जो इंडियन काउंसिल कहलाती थी के ऊपर भारतीय प्रशासन का उत्तरदायित्व डाला गया। 1858 ई0. के अधिनियम के द्वारा केवल गृह सरकार में ही परिवर्तन किया गए जबकि भारतीय प्रशासन में कोई भी परिवर्तन नहीं किया गया था 1857 ई0. के महा विद्रोह की समाप्ति के पश्चात इसके कारणों की समीक्षा के लिए बनी समिति ने अनेकों सुझाव दिए। जिसमें सबसे प्रमुख संविधानिक परिवर्तनों की आवश्यकता को बताया गया। विधान निर्माण करने वाली संस्थाओं में भारतीयों के प्रतिनिधित्व को शामिल करने का विचार किया गया। इस अधिनियम के प्रमुख प्रावधान इस प्रकार हैं– भारत के गवर्नर जनरल के पद को नाम परिवर्तित करके भारत के वायसराय नाम से किया गया कार्यकारी परिषद में 5वां सदस्य भी शामिल किया गया विभागीय प्रणाली को आरंभ किया गया वायसराय की कार्यकारी परिषद में न्यूनतम 6 व अधिकतम 12 सदस्य रखे गए जिनमें आधे सदस्य गैर सरकारी होंगे। इस परिषद का कार्य केवल कानून बनाना था इनको प्रशासन अथवा वित्त इत्यादि पर प्रश्न पूछने का कोई अधिकार नहीं था तथा गवर्नर जनरल को संकट कालीन अवस्था में विधान परिषद की अनुमति के बिना अध्यादेश लाने की शक्ति दी गई।

1861 ई0. के भारतीय परिषदीय अधिनियम द्वारा स्थापित विधान परिषदों में जो भी गैर सरकारी तत्व थे वह भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे इनमें केवल बड़े–बड़े जमीदार, अवकाश प्राप्त अधिकारी, व भारतीय राजा महाराजा इत्यादि होते थे इसके अलावा 19वीं सदी में अनेकों राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना (विशषतः 1885 ई0. में कांग्रेस पार्टी) के कारण भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना ने उभरना प्रारंभ कर दिया था। परिणामस्वरूप भारतीयों ने संवैधानिक सुधारों पर जोर देकर प्रतिनिधित्व सरकार में अधिकाधिक भारतीयों की भागीदारी पर बल दिया। इन सभी की पृष्ठभूमि में ब्रिटिश द्वारा 1892 ईसवी का भारतीय परिषद अधिनियम लाया गया, इस अधिनियम में केवल भारतीय विधान परिषद की शक्तियां तथा कार्यरचना की बात कही गई। परिषद के सदस्यों की न्यूनतम संख्या को बढ़ाकर कम से कम 10 अधिक से अधिक 16 किया गया।

परिषद में कम से कम 40 प्रतिशत लोग गैर सरकारी होने चाहिए जिनमें से कुछ चुने हुए तथा कुछ मनोनीत होते थे।[8] इस अधिनियम में सबसे विवादास्पद मुद्दा किंबरले धारा के माध्यम से परिषद के सदस्यों के लिए चुनाव प्रणाली को प्रारंभ करना था। जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली स्थानीय संस्थाओं को अपने प्रतिनिधियों को चुनने, चयन करने तथा मनोनीत करने का अधिकार दिया गया तथा सार्वजनिक हित के मामलों में 6 दिन की पूर्व सूचना देकर प्रश्न पूछने का अधिकार भी दिया गया। किंतु उन्हें पूरक प्रश्न पूछने का कोई अधिकार नहीं था। सदस्यो को बजट पर बहस करने का अधिकार तो मिला किंतु वे उस पर मत विभाजन की मांग नहीं कर सकते थे। इसी प्रकार सदस्यों को प्रस्ताव प्रस्तुत करने का भी कोई अधिकार नहीं दिया गया था।

इस प्रकार भारत में निरंतर बढ़ती राजनीतिक व राष्ट्रवादी चेतना द्वारा संवैधानिक सुधारों की मांग तथा अनेक राजनीतिक परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप 1909 ई0. में भारतीय परिषद अधिनियम पारित किया गया जिसे प्रायः मार्ले–मिंटो सुधार के रूप में भी जाना जाता है 1892 ई0. के परिषदीय अधिनियम की तुलना में यह अधिक सुधारात्मक प्रकृति का था इसके अंतर्गत केंद्रीय विधान मंडल के सदस्यों की संख्या में वृद्धि की गई। सदस्य पूरक प्रश्न भी पूछ सकते थे किंतु अभी भी सदस्यों को बजट इत्यादि आवश्यक हितों पर मत देने का अधिकार नहीं दिया गया था। यद्यपि वायसराय की असीमित शक्ति अभी भी बरकरार थी तथा वह विधानमंडल की राय को अपने विवेकाधिकार से पलट सकता था। इस अधिनियम की सबसे घृणित व विवादास्पद नकारात्मक व्यवस्था मुस्लिमों को आरक्षण देने की थी जिसने ब्रिटिश भारत में अभी तक हुए सभी संवैधानिक सुधारों पर पानी फेर दिया क्योंकि इस अधिनियम की इसी आरक्षित व्यवस्था ने भविष्य में जातिगत आरक्षण व भारत के विभाजन कराने का आधार तैयार किया।

1909 ई0. के कुख्यात अधिनियम, प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति, व अनेक राजनीतिक परिवर्तनों के बीच भारत सरकार अधिनियम 1919 ई0. पारित किया गया जिसे मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार के नाम से भी जाना जाता है।[9] अधिनियम के अंतर्गत केंद्र में द्विसदनीय व्यवस्था स्थापित की गई। उच्च सदन को राज्य परिषद व निम्न सदन को केंद्रीय विधानसभा कहा जाता था। दोनों की सदस्यता प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से मताधिकार द्वारा प्राप्त होती थी। केंद्रीय विधानसभा का कार्यकाल 3 वर्ष था तथा उच्च सदन का कार्यकाल 5 वर्ष था। प्रांतों में स्थानों का बंटवारा जनसंख्या पर आधारित न होकर उनके सामरिक महत्व पर आधारित था। केंद्रीय विधान मंडल समस्त भारतीय क्षेत्र पर कानून बना सकती थी। अनेक विषयों पर गवर्नर जनरल के पास वीटो पॉवर थी। समवर्ती सूची व प्रस्तावना का कोई भी प्रावधान नहीं था। इस अधिनियम में मुस्लिमों के साथ–साथ सिखों को भी आरक्षित श्रेणी में कर दिया गया। इस एक्ट के द्वारा महत्वपूर्ण परिवर्तन प्रांतीय प्रशासन में आया हालांकि प्रांतों में अभी भी द्विसदनीय व्यवस्था तो आरंभ नहीं की गई थी किंतु प्रांतीय विषयों को दो श्रेणियों में आरक्षित व हस्तांतरित मदों के रूप में बांट दिया गया। महिलाओं को अभी भी सदस्यता के लिए अनुपयुक्त समझा गया।

भारतीयों द्वारा अपनी स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए किए जा रहे जन आंदोलनों, साइमन आयोग, मोतीलाल नेहरू रिपोर्ट तथा गोलमेज सम्मेलन के पश्चात ब्रिटिश ने संवैधानिक सुधारों का एक नया जाल फेंकते हुए भारत सरकार अधिनियम 1935 पारित किया।[10] यह तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया गया था– 1. अखिल भारतीय संघ 2. संरक्षणो सहित उत्तरादायी सरकार, 3. भिन्न–भिन्न संप्रदाय के लिए पृथक आरक्षित प्रतिनिधित्व। यह एक लंबा व विस्तृत दस्तावेज था जिसमें 321 धाराएं तथा 10 अनुसूचियां थी। प्रस्तावित भारतीय संघ में भारतीय प्रांतों तथा मुख्य आयुक्तों के प्रांतों का सम्मिलित होना अनिवार्य था परंतु भारतीय रियासतों का सम्मिलित होना ऐच्छिक था। कार्यकारिणी व्यवस्था को आरक्षित तथा हस्तांतरित विषयो में बांट दिया गया राज्य परिषद (उच्च सदन) का कार्यकाल 3 वर्ष व निम्न सदन (विधानमंडल) का कार्यकाल 5 वर्ष रखा गया। विषयों को केंद्रीय सूची, प्रांतीय सूची, व समवर्ती सूची में बांट दिया गया तथा अवशिष्ट शक्तियां गवर्नर जनरल के लिए आरक्षित कर दी गई। एक संघीय न्यायालय की स्थापना भी की गई। यह संविधान काफी जटिल था तथा इसमें संशोधन करने का अधिकार केवल ब्रिटिश संसद को ही था। भारतीय विधान मंडल केवल प्रस्ताव द्वारा विचार प्रकट कर सकती था किंतु इस अधिनियम की व्यवस्था द्वारा अखिल भारतीय संघ कभी भी अस्तित्व में नहीं आ सका क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि संघ को कार्यान्वित ना करके प्रांतीय स्वायत्तता को 1 अप्रैल 1937 ई0. से लागू किया जाये। प्रांतीय विधानमंडल की स्वायत्तता को अधिक विस्तृत कर दिया गया था क्योंकि प्रांतों में अब कोई आरक्षित व हस्तांतरित विभाग नहीं थे तथा कुछ प्रांतों में द्विसदनीय व्यवस्था की गई थी।

इस प्रकार भारतीयों के अनवरत स्वतंत्रता आंदोलनों व प्रतिकूल वैश्विक परिवेश में 20 फरवरी 1947 ई0. को ब्रिटिश प्रधानमंत्री क्लीमेंट एटली ने घोषणा की कि 30 जून 1947 ई0. को भारत में ब्रिटिश शासन समाप्त हो जाएगा।[11] अंततः 3 जून 1947 ई0. को भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 ई0. पेश किया गया। जिसने ब्रिटिश राज को समाप्त कर भारत और पाकिस्तान को दो संप्रभु राष्ट्रों में विभाजित कर दिया तथा प्रावधान किया कि 1946 में गठित संविधान सभा द्वारा बनाया गया संविधान उन क्षेत्रों पर लागू नहीं होगा जो इसे स्वीकार नहीं करेंगे। अंततः 14–15 अगस्त की मध्यरात्रि भारत में ब्रिटिश शासन का अंत हो गया और समस्त शक्तियां दो नए स्वतंत्र डोमिनियनो भारत और पाकिस्तान को हस्तांतरित कर दी गई।

कैबिनेट मिशन योजना द्वारा सुझाए गए प्रस्तावों के तहत संविधान सभा का गठन किया गया जिसमें 296 सीटें ब्रिटिश भारत तथा 93 सीटें देसी रियासतों को आवंटित की गई। 9 दिसंबर को संविधान सभा की पहली बैठक में अनेक समितियों का गठन किया गया जिनमें डॉ० बी आर अंबेडकर की अध्यक्षता में प्रारूप समिति प्रमुख थी जिसका प्रमुख कार्य स्वतंत्र भारत के संविधान का निर्माण करना था इस समिति ने भारत की भौगोलिक आर्थिक सामाजिक व राजनीतिक विविधता में एकरूपता बनाये रखने के लिए अनेक देशों के मिश्रित संविधानिक उपबंधो का प्रयोग किया जिसके परिणाम स्वरूप विविधता में एकता के सूत्र वाक्य को बनाए रखते हुए आंशिक रूप से 26 नवंबर 1949 ई0. को और संपूर्ण संविधान 26 जनवरी 1950 ई0. को लागू हुआ।

इस प्रकार रेगुलेटिंग एक्ट 1773 ई0. से आरंभ हुई विधि निर्माण की प्रक्रिया अंततः स्वतंत्र भारत में संविधान के निर्माण पर पूर्ण हुई जिसमें मूल रूप से 395 अनुच्छेद 22 भाग व 8 अनुसूचियां थी। जिसमें भारत की आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक विविधता में एकरूपता बनाए रखने के लिए संविधान को काफी विस्तृत किया गया। अंतिम रूप से तैयार भारतीय संविधान में सबसे अधिक योगदान भारत सरकार अधिनियम 1935 का रहा जिसके अधिकांशत प्रावधान शब्दशःया पूर्णतः ही लिए गए हैं। बदलते परिवेश में बदलाव की उपयोगिता के सिद्धांत पर अभी तक अनेक संविधानिक संशोधन हो चुके हैं जो संविधान की लोचशीलता को भी प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार वर्तमान में भारतीय संविधान में 470 अनुच्छेद 25 भाग व 12 अनुसूचियां हैं जो भारत की विविधता में एकता की विशेषता को प्रदर्शित करता हैं। आज भी विश्व के प्रमुख लोकतांत्रिक व्यवस्था वाले देशों में भारतीय संविधान की एक सफल संविधान के रूप में चर्चा की जाती है।

संदर्भ

1. वर्मा, दीनानाथ व सिंह, शिव कुमार : *विश्व इतिहास का सर्वेक्षण*, भारती भवन प्रकाशन, पटना 2009, पृ0. 88।
2. एन0सी0ई0आर0टी0, *समकालीन विश्व का इतिहास*, कक्षा ग्प्, दिल्ली, 2003, पृ0. 36।
3. चंद्रा, विपिन : *भारत का स्वतंत्रता संघर्ष*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, 2004, पृ0. 214।
4. शुक्ल, राम लखन : *आधुनिक भारत का इतिहास*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, 2014, पृ0. 97।
5. ग्रोवर, बी0एल0 व यशपाल : *आधुनिक भारत का इतिहास एक नवीन मूल्यांकन*, एस0. चंद प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ0. 369।
6. शुक्ल, राम लखन : *आधुनिक भारत का इतिहास*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, 2014, पृ0. 91।
7. महाजन, वी0डी0 : *आधुनिक भारत का इतिहास*, एस चंद प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0. 333।
8. शुक्ल, राम लखन : *आधुनिक भारत का इतिहास*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, फरवरी 2014, पृ0. 772।
9. ग्रोवर, बी0एल0 व यशपाल, *आधुनिक भारत का इतिहास एक नवीन मूल्यांकन*, एस0 चंद प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ0. 393।
10. लक्ष्मीकांत, एम0. : *भारत की राज्य व्यवस्था*, मैकग्रा हिल पब्लिकेशन, चेन्नई, छठा संस्करण, पृ0. 1–8।
11. वहीं, पृष्ठ सं0. 1–9।